

भारतीय परम्परा में सदाचार की अवधारणा : एक दार्शनिक अवलोकन

रामानन्द कुलदीप

एसोसिएट प्रोफेसर, दर्शनशास्त्र विभाग

सम्राट पृथ्वीराज चौहान राजकीय महाविद्यालय, अजमेर, राजस्थान

सारांश : भारतीय परम्परा में सदाचार केवल शिष्ट व्यवहार अथवा लोक-मर्यादा नहीं है, अपितु वह धर्म का प्रत्यक्ष और जीवन्त प्रमाण माना गया है। मनु और याज्ञवल्क्य ने वेद तथा स्मृति के साथ सदाचार को धर्म के साक्षात् लक्षणों में परिगणित किया है। प्रस्तुत शोध आलेख में 'सदाचार' पद के अर्थ, उसके वैदिक मूल, उपनिषदों में उसके आदर्श, धर्मशास्त्रों में धर्म-प्रमाण के रूप में उसकी स्थिति, मीमांसा में आचार-प्रामाण्य, महाभारत एवं गीता में शिष्ट के आचरण की प्रतिष्ठा, बौद्ध शील, जैन चरित्र, योगदर्शन के यम-नियम तथा गांधी के एकादश व्रतों का विवेचन किया गया है। साथ ही सदाचार के प्रमुख तत्त्वों—सत्य, आत्मसंयम, अहिंसा, करुणा, परोपकार, क्षमा और अपरिग्रह—का मूल ग्रन्थों के आधार पर विश्लेषण किया गया है। आलेख का प्रतिपाद्य यह है कि भारतीय सदाचार ऋत और धर्म पर आधारित है, शिष्टों के आचरण के माध्यम से अभिव्यक्त होता है और चित्तशुद्धि की ओर उन्मुख है; तथा इसमें विधि (नियम) और सद्गुण दोनों का समन्वय है।

मुख्य शब्द : सदाचार, शिष्टाचार, धर्म, ऋत, सत्य, अहिंसा, आत्मसंयम, आचार-प्रामाण्य, यम-नियम, शील, अणुव्रत, लोकसंग्रह।

1. प्रस्तावना

भारतीय परम्परा में ज्ञान और आचरण को परस्पर विच्छिन्न नहीं माना गया। यहाँ यह सुस्थिर विश्वास रहा है कि सत्य का बोध उसी चित्त में होता है जो आचरण से शुद्ध हो। इसी कारण वसिष्ठ धर्मसूत्र स्पष्ट कहता है कि छहों अंगों सहित अधीत वेद भी आचारहीन व्यक्ति को पवित्र नहीं करते।¹

¹वसिष्ठ धर्मसूत्र, 6.3 – “आचारहीनं न पुनन्ति वेदाः”; द्रष्टव्य : पैट्रिक ओलिवेल (अनु. एवं सं.), द धर्मसूत्राज, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, ऑक्सफोर्ड, 1999, वसिष्ठ, अध्याय 6।

भारतीय नीति-चिन्तन का प्रश्न केवल यह नहीं है कि 'क्या करना चाहिए?', अपितु यह भी है कि 'किस प्रकार का मनुष्य बनना चाहिए?' इन दोनों प्रश्नों का उत्तर जिस अवधारणा में एक साथ मिलता है, वह 'सदाचार' है।

2. 'सदाचार' पद का अर्थ एवं स्वरूप

'सदाचार' पद 'सत्' और 'आचार' के योग से बना है। 'आचार' शब्द 'आङ्' उपसर्गपूर्वक 'चर्' धातु से निष्पन्न है, जिसका अर्थ है—आचरण अथवा व्यवहार की रीति।² 'सत्' शब्द के अर्थ को भगवद्गीता स्पष्ट करती है—सद्भाव और साधुभाव में तथा प्रशंसनीय कर्म के लिए 'सत्' शब्द प्रयुक्त होता है:

सद्भावे साधुभावे च सदित्येतत्प्रयुज्यते।

प्रशस्ते कर्मणि तथा सच्छब्दः पार्थ युज्यते॥³

इस प्रकार 'सदाचार' के दो अर्थ प्राप्त होते हैं—(1) 'सतां आचारः', अर्थात् सज्जनों या शिष्टों का आचरण, तथा (2) 'सन् आचारः', अर्थात् स्वयं में प्रशस्त आचरण। प्रथम अर्थ में सदाचार का प्रामाण्य आचरणकर्ता की शिष्टता पर आश्रित है, द्वितीय में आचरण का औचित्य उसके अपने स्वरूप में निहित है। भारतीय सदाचार-चिन्तन इन्हीं दो अर्थों के समन्वय पर आधारित है। मनुस्मृति की परिभाषा प्रथम अर्थ को पुष्ट करती है, जहाँ परम्परा-क्रम से चले आ रहे आचार को सदाचार कहा गया है:

तस्मिन्देशे य आचारः पारम्पर्यक्रमागतः।

वर्णानां सान्तरालानां स सदाचार उच्यते॥⁴

²पाणिनीय धातुपाठ, भ्वादिगण – “चर गतिभक्षणयोः”।

³श्रीमद्भगवद्गीता, 17.26; द्रष्टव्य : श्रीमद्भगवद्गीता (शांकरभाष्य हिन्दी-अनुवाद सहित), गीताप्रेस, गोरखपुर।

⁴मनुस्मृति, 2.18; द्रष्टव्य : मनुस्मृति (कुल्लूकभट्टकृत मन्वर्थमुक्तावली सहित), तथा पैट्रिक ओलिवेल, मनूज कोड ऑफ लॉ, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, न्यूयॉर्क, 2005।

किन्तु परम्परा ने प्रथा-मात्र को सदाचार स्वीकार नहीं किया; वेद-अविरोध, शिष्ट के गुण और आत्मतुष्टि जैसी कसौटियाँ भी साथ-साथ विकसित हुईं, जिनका विवेचन आगे किया गया है।

3. वैदिक मूल : ऋत, व्रत और सत्य

सदाचार का मूल वैदिक 'ऋत' में है। ऋग्वेद में ऋत वह सार्वभौम व्यवस्था है जिसके अनुरूप आचरण ही उचित आचरण है; ऋत और सत्य को तप से उत्पन्न बताया गया है।⁵ ऋत का संरक्षक वरुण 'धृतव्रत' है—नियत आचरण (व्रत) को धारण करने वाला।⁶ 'व्रत' यहाँ उस नियत आचरण का द्योतक है जिसकी अपेक्षा मनुष्य से की जाती है; यही परवर्ती सदाचार का बीज है। शतपथ ब्राह्मण का कथन "सत्यमेव देवा अनृतं मनुष्याः"⁷ सत्याचरण को देवत्व की ओर ले जाने वाली साधना बताता है, और बृहदारण्यक उपनिषद् धर्म और सत्य का तादात्म्य घोषित करता है—"यो वै स धर्मः सत्यं वै तत्"⁸ इस प्रकार वैदिक दृष्टि में सदाचार का आधार व्यक्ति की रुचि नहीं, अपितु ऋत, सत्य और धर्म की वस्तुनिष्ठ व्यवस्था है।

4. उपनिषदों में सदाचार

सदाचार का सबसे स्पष्ट उपनिषदीय निरूपण तैत्तिरीय उपनिषद् की शिक्षावल्ली के एकादश अनुवाक में है, जो समावर्तन के समय आचार्य का स्नातक को उपदेश है:

सत्यं वद। धर्मं चर। स्वाध्यायान्मा प्रमदः।⁹

इस उपदेश की विशेषता यह है कि आचार्य स्वयं को भी नैतिक मूल्यांकन से परे नहीं रखता: जो अनिन्द्य कर्म हैं उन्हीं का सेवन करना, अन्यो का नहीं; और "हमारे जो सुचरित हैं, उन्हीं की

⁵ ऋग्वेद, 10.190.1 – "ऋतं च सत्यं चाभीद्धातपसोऽध्यजायत"; द्रष्टव्य : ऋग्वेदसंहिता (सायणभाष्य सहित), वैदिक संशोधन मण्डल, पुणे।

⁶ ऋग्वेद, 1.25.10 – "नि षसाद धृतव्रतो वरुणः पस्त्यास्वा"।

⁷ शतपथ ब्राह्मण, 1.1.1.4।

⁸ बृहदारण्यक उपनिषद्, 1.4.14; द्रष्टव्य : बृहदारण्यकोपनिषद् (शांकरभाष्य सहित), गीताप्रेस, गोरखपुर।

⁹ तैत्तिरीय उपनिषद्, 1.11.1; द्रष्टव्य : ईशादि नौ उपनिषद् (शांकरभाष्यार्थ सहित), गीताप्रेस, गोरखपुर।

उपासना करना, अन्यो की नहीं।”¹⁰ यहाँ ‘सन् आचारः’ का अर्थ प्रतिष्ठित होता है—गुरु का आचरण भी तभी अनुकरणीय है जब वह स्वयं ‘सुचरित’ हो।

इसी अनुवाक में संशय की स्थिति के लिए कसौटी दी गई है: यदि कर्म या आचरण के विषय में संदेह हो, तो वहाँ जो विचारशील, कर्तव्यनिष्ठ, कोमल-स्वभाव और धर्मकामी ब्राह्मण हों, वे जैसा आचरण करें वैसा ही करना चाहिए।¹¹ यह शिष्टाचार के प्रामाण्य का उपनिषदीय मूल है। ध्यान देने योग्य है कि यहाँ शिष्ट की पहचान विवेकशीलता (संमर्शिनः) और करुणाशीलता (अलूक्षाः) जैसे गुणों से की गई है।

कठोपनिषद् श्रेय और प्रेय के विवेक के रूप में सदाचार की आन्तरिक भूमि प्रस्तुत करता है—धीर पुरुष प्रेय की अपेक्षा श्रेय का वरण करता है।¹² ईशावास्य का “तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्यस्विद्धनम्”¹³ लोभ-त्याग का सूत्र है, और बृहदारण्यक का प्रजापति-उपदेश ‘दाम्यत, दत्त, दयध्वम्’—संयम, दान और दया—सदाचार का त्रिसूत्री सार है।¹⁴ छान्दोग्य उपनिषद् आहार-शुद्धि से सत्त्व-शुद्धि का क्रम बताकर आचार और चित्तशुद्धि का सम्बन्ध स्थापित करता है।¹⁵

¹⁰ तैत्तिरीय उपनिषद्, 1.11.2 – “यान्यनवद्यानि कर्माणि तानि सेवितव्यानि नो इतराणि। यान्यस्माकं सुचरितानि तानि त्वयोपास्यानि नो इतराणि।”

¹¹ तैत्तिरीय उपनिषद्, 1.11.4 – “अथ यदि ते कर्मविचिकित्सा वा वृत्तविचिकित्सा वा स्यात्। ये तत्र ब्राह्मणाः संमर्शिनः युक्ता आयुक्ताः अलूक्षा धर्मकामाः स्युः। यथा ते तत्र वर्तेरन्। तथा तत्र वर्तेथाः।”

¹² कठोपनिषद्, 1.2.1-2 – “श्रेयश्च प्रेयश्च मनुष्यमेतस्तौ सम्परीत्य विविनक्ति धीरः।”

¹³ ईशावास्योपनिषद्, मन्त्र 1।

¹⁴ बृहदारण्यक उपनिषद्, 5.2.1-3।

¹⁵ छान्दोग्य उपनिषद्, 7.26.2 – “आहारशुद्धौ सत्त्वशुद्धिः सत्त्वशुद्धौ ध्रुवा स्मृतिः।”

5. धर्मशास्त्र में सदाचार : धर्म का प्रमाण

धर्मसूत्रों और स्मृतियों में सदाचार को धर्म के प्रमाणों में स्थान दिया गया। गौतम धर्मसूत्र वेद को धर्म का मूल तथा वेदज्ञों की स्मृति और शील को उसका प्रमाण मानता है।¹⁶ आपस्तम्ब धर्मसूत्र अपने विषय को 'सामयाचारिक धर्म' कहता है और धर्मज्ञों की सहमति को प्रमाण मानता है।¹⁷

मनुस्मृति के अनुसार सम्पूर्ण वेद धर्म का मूल है, फिर वेदज्ञों की स्मृति और शील, साधुओं का आचार तथा आत्मतुष्टि।¹⁸ इसी को संक्षेप में धर्म के चार साक्षात् लक्षणों के रूप में कहा गया है:

वेदः स्मृतिः सदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः।

एतच्चतुर्विधं प्राहुः साक्षाद्धर्मस्य लक्षणम्॥¹⁹

याज्ञवल्क्य स्मृति इसमें 'सम्यक् संकल्प से उत्पन्न काम' को जोड़ती है।²⁰ मनु आचार को "परमो धर्मः" कहते हैं²¹ और उसका फल दीर्घायु, सन्तति और समृद्धि बताते हैं।²² यहाँ धर्म और सदाचार का सम्बन्ध सिद्धान्त और उसकी व्यावहारिक अभिव्यक्ति का है; जहाँ शास्त्र-वचन स्पष्ट न हो, वहाँ शिष्टों का आचरण धर्म का मार्गदर्शक बनता है।

धर्मशास्त्र में सदाचार का सार्वभौम पक्ष 'सामान्य धर्म' के रूप में व्यक्त हुआ। मनु द्वारा परिगणित धर्म के दस लक्षण—धृति, क्षमा, दम, अस्तेय, शौच, इन्द्रियनिग्रह, धी, विद्या, सत्य और

¹⁶ गौतम धर्मसूत्र, 1.1-2 – "वेदो धर्ममूलम्। तद्विदां च स्मृतिशीले।"

¹⁷ आपस्तम्ब धर्मसूत्र, 1.1.1.1-2 – "अथातः सामयाचारिकान् धर्मान् व्याख्यास्यामः। धर्मज्ञसमयः प्रमाणम्।"

¹⁸ मनुस्मृति, 2.6 – "वेदोऽखिलो धर्ममूलं स्मृतिशीले च तद्विदाम्। आचारश्चैव साधूनामात्मनस्तुष्टिरेव च॥"

¹⁹ मनुस्मृति, 2.12।

²⁰ याज्ञवल्क्य स्मृति, 1.7 – "श्रुतिः स्मृतिः सदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः। सम्यक्संकल्पजः कामो धर्ममूलमिदं स्मृतम्॥"; द्रष्टव्य : याज्ञवल्क्यस्मृति (मिताक्षरा सहित)।

²¹ मनुस्मृति, 1.108 – "आचारः परमो धर्मः श्रुत्युक्तः स्मार्त एव च।"

²² मनुस्मृति, 4.156 – "आचाराल्लभते ह्यायुराचारादीप्सिताः प्रजाः। आचाराद्धनमक्षय्यमाचारो हन्त्यलक्षणम्॥"

अक्रोध—²³ तथा सभी वर्णों के लिए समान संक्षिप्त धर्म—अहिंसा, सत्य, अस्तेय, शौच और इन्द्रियनिग्रह—²⁴ इसी पक्ष का प्रतिनिधित्व करते हैं। वाणी के सदाचार के लिए मनु का सूत्र है कि सत्य और प्रिय बोलना चाहिए, अप्रिय सत्य और प्रिय असत्य नहीं।²⁵ धर्म के स्रोतों और शिष्टाचार की धर्मशास्त्रीय अवधारणा का विस्तृत ऐतिहासिक विवेचन पी. वी. काणे ने किया है।²⁶

6. आचार-प्रामाण्य : मीमांसा का पक्ष

सदाचार धर्म का प्रमाण क्यों और किस सीमा तक है—इसका दार्शनिक उत्तर पूर्वमीमांसा देती है। मीमांसा धर्म को 'चोदनालक्षण अर्थ' मानती है, अर्थात् धर्म का ज्ञान वैदिक विधि-वाक्य से होता है।²⁷ ऐसे में स्मृति और आचार का प्रामाण्य एक समस्या बन जाता है। स्मृतिपाद में पूर्वपक्ष यह है कि धर्म शब्दमूलक है, अतः जो वेद-वाक्य पर आधारित नहीं, वह अप्रमाण है; सिद्धान्त यह है कि कर्ता की समानता (वेदज्ञ होने) के कारण उससे मूलभूत वेद का अनुमान होता है, किन्तु श्रुति से विरोध होने पर वह उपेक्षणीय है।²⁸ यही तर्क शिष्टाचार पर लागू होता है—शिष्टों का आचार किसी अनुपलब्ध श्रुति का अनुमापक है।

इसके तीन निहितार्थ हैं। प्रथम, सदाचार स्वतः-प्रमाण नहीं, परतः-प्रमाण है; उसका प्रामाण्य श्रुति-मूलकता पर निर्भर है। द्वितीय, सदाचार पर 'अविरोध' की कसौटी लागू होती है, जिससे प्रथा

²³मनुस्मृति, 6.92 – “धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः। धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम्॥”

²⁴मनुस्मृति, 10.63 – “अहिंसा सत्यमस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः। एतं सामासिकं धर्मं चातुर्वर्ण्येऽब्रवीन्मनुः॥”

²⁵मनुस्मृति, 4.138 – “सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयान्न ब्रूयात् सत्यमप्रियम्। प्रियं च नानृतं ब्रूयादेष धर्मः सनातनः॥”

²⁶पी. वी. काणे, हिस्ट्री ऑफ़ धर्मशास्त्र, खण्ड 1 एवं खण्ड 2 (भाग 1), भण्डारकर ओरियण्टल रिसर्च इंस्टीट्यूट, पूना, 1930 एवं 1941; हिन्दी अनुवाद : धर्मशास्त्र का इतिहास, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ।

²⁷जैमिनि, मीमांसासूत्र, 1.1.2 – “चोदनालक्षणोऽर्थो धर्मः”; द्रष्टव्य : मीमांसादर्शनम् (शाबरभाष्य सहित), आनन्दाश्रम संस्कृत ग्रन्थावली, पुणे।

²⁸जैमिनि, मीमांसासूत्र, 1.3.1-3 – “धर्मस्य शब्दमूलत्वादशब्दमनपेक्षं स्यात्”, “अपि वा कर्तृसामान्यात्प्रमाणमनुमानं स्यात्”, “विरोधे त्वनपेक्षं स्यादसति ह्यनुमानम्”।

मात्र के नाम पर किसी आचरण को धर्म नहीं ठहराया जा सकता। तृतीय, इससे सदाचार न अन्ध-अनुकरण रहता है, न नितान्त व्यक्तिगत रुचि, अपितु तर्कसंगत आधार वाली परम्परा बनता है।

7. महाभारत एवं भगवद्गीता में सदाचार

महाभारत के यक्ष-युधिष्ठिर संवाद में सदाचार की अनिवार्यता का दार्शनिक निरूपण है: तर्क अप्रतिष्ठित है, श्रुतियाँ भिन्न-भिन्न हैं, कोई एक ऐसा ऋषि नहीं जिसका मत सर्वमान्य हो; धर्म का तत्त्व गुहा में निहित है, अतः महापुरुष जिस मार्ग से गए, वही पथ है:

धर्मस्य तत्त्वं निहितं गुहायां महाजनो येन गतः स पन्थाः॥²⁹

अर्थात् जहाँ सैद्धान्तिक प्रमाण अनिर्णायक हों, वहाँ शिष्ट का जीवन ही नैतिक मार्गदर्शन का स्रोत है। महाभारत सदाचार का संक्षिप्त सार भी देता है—जो अपने प्रतिकूल हो, वह दूसरों के प्रति न करना।³⁰

भगवद्गीता शिष्ट के आचरण को लोक के लिए प्रमाण मानती है—श्रेष्ठ पुरुष जैसा आचरण करता है, अन्य लोग वैसा ही करते हैं; वह जिसे प्रमाण बनाता है, लोक उसी का अनुसरण करता है।³¹ इसी से 'लोकसंग्रह' की अवधारणा जुड़ी है।³² गीता सदाचार की आन्तरिक शर्त भी बताती है—कर्म में अधिकार है, फल में नहीं;³³ अर्थात् सदाचार का मूल्य कर्म के पीछे की निष्काम चेतना में है।

²⁹ महाभारत, वनपर्व, 313.117; द्रष्टव्य : महाभारत (हिन्दी अनुवाद सहित), गीताप्रेस, गोरखपुर। (भण्डारकर समीक्षित संस्करण में श्लोक-संख्या भिन्न है।)

³⁰ महाभारत, अनुशासनपर्व, 113.8 – “न तत्परस्य संदध्यात् प्रतिकूलं यदात्मनः। एष संक्षेपतो धर्मः कामादन्यः प्रवर्तते॥” (गीताप्रेस संस्करण)।

³¹ श्रीमद्भगवद्गीता, 3.21 – “यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः। स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते॥”

³² श्रीमद्भगवद्गीता, 3.20 – “लोकसंग्रहमेवापि सम्पश्यन्कर्तुमर्हसि।”

³³ श्रीमद्भगवद्गीता, 2.47 – “कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।”

सोलहवें अध्याय में दैवी सम्पद् के गुणों—अभय, सत्त्वसंशुद्धि, दान, दम, अहिंसा, सत्य, अक्रोध, त्याग, शान्ति, दया, अलोलुपता, मार्दव, क्षमा, शौच आदि—का वर्णन सदाचार का सद्गुण-केन्द्रित चित्र प्रस्तुत करता है।³⁴ सत्रहवें अध्याय का शारीरिक, वाचिक और मानसिक तप सदाचार की समग्रता दर्शाता है; वाचिक तप के रूप में उद्वेग न करने वाला, सत्य, प्रिय और हितकर वचन अपेक्षित है।³⁵

8. बौद्ध एवं जैन परम्परा में सदाचार

बौद्ध धर्म में सदाचार 'शील' है, जो शील, समाधि और प्रज्ञा के त्रिक में प्रथम है। आर्य अष्टांगिक मार्ग के सम्यक् वाक्, सम्यक् कर्मान्त और सम्यक् आजीव शील-स्कन्ध के अन्तर्गत आते हैं।³⁶ बुद्धघोष ने विसुद्धिमग्ग के प्रथम परिच्छेद में शील का विस्तृत विवेचन किया है।³⁷ गृहस्थ के लिए सदाचार का आधार पंचशील है—प्राणातिपात, अदत्तादान, काम-मिथ्याचार, मृषावाद तथा मद्य आदि प्रमाद-स्थानों से विरति।³⁸ धम्मपद बुद्ध-शासन का सार इस प्रकार देता है—सब पापों का न करना, कुशल का सम्पादन और अपने चित्त का परिशोधन।³⁹ यहाँ सदाचार के निषेधात्मक, विधेयात्मक और आन्तरिक—तीनों पक्ष एक साथ व्यक्त हैं।

जैन दर्शन में सदाचार 'सम्यक् चारित्र' है, जो सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान के साथ मिलकर मोक्षमार्ग बनता है।⁴⁰ हिंसा, अनृत, स्तेय, अब्रह्म और परिग्रह से विरति व्रत है—आंशिक पालन में

³⁴ श्रीमद्भगवद्गीता, 16.1-3।

³⁵ श्रीमद्भगवद्गीता, 17.14-16; विशेषतः 17.15 — “अनुद्वेगकरं वाक्यं सत्यं प्रियहितं च यत्।”

³⁶ धम्मचक्कप्पवत्तन सुत्त, संयुत निकाय, 56.11; द्रष्टव्य : भिक्खु बोधि (अनु.), द कनेक्टेड डिस्कोर्सेज़ ऑफ़ द बुद्ध, विज़डम पब्लिकेशंस, बोस्टन, 2000।

³⁷ बुद्धघोष, विसुद्धिमग्ग, प्रथम परिच्छेद (सीलनिददेस); द्रष्टव्य : भिक्खु जाणमोत्ति (अनु.), द पाथ ऑफ़ प्यूरिफिकेशन, बुद्धिस्ट पब्लिकेशन सोसायटी, कैण्डी।

³⁸ पीटर हार्वे, एन इण्ट्रोडक्शन टु बुद्धिस्ट एथिक्स, कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, कैम्ब्रिज, 2000, अध्याय 2।

³⁹ धम्मपद, गाथा 183 — “सब्बपापस्स अकरणं कुसलस्स उपसम्पदा। सचित्तपरियोदपनं एतं बुद्धान सासनं॥”; द्रष्टव्य : के. आर. नॉर्मन (अनु.), द वर्ड ऑफ़ द डॉक्ट्रिन, पालि टेक्स्ट सोसायटी, ऑक्सफोर्ड, 1997।

⁴⁰ उमास्वाति, तत्त्वार्थसूत्र, 1.1 — “सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः”; द्रष्टव्य : पं. सुखलाल संघवी (विवेचक), तत्त्वार्थसूत्र, पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध संस्थान, वाराणसी।

अणुव्रत (गृहस्थ हेतु) और पूर्ण पालन में महाव्रत (श्रमण हेतु)।⁴¹ इस सदाचार का केन्द्र अहिंसा है, जिसका आधार आचारांगसूत्र इस अनुभव में बताता है कि सभी प्राणियों को जीवन प्रिय है, सब सुख चाहते हैं और दुःख उन्हें प्रतिकूल है।⁴²

9. योगदर्शन में सदाचार : यम-नियम

पतंजलि के अष्टांग योग के प्रथम दो अंग—यम और नियम—सदाचार का व्यवस्थित रूप हैं। अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह यम हैं,⁴³ तथा शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वरप्रणिधान नियम।⁴⁴ योगसूत्र की निर्णायक घोषणा यह है कि जाति, देश, काल और परिस्थिति से अनवच्छिन्न होकर पालन किए जाने पर ये यम 'सार्वभौम महाव्रत' बन जाते हैं।⁴⁵ इस प्रकार योगदर्शन सदाचार को देश-काल-सापेक्ष आचार से ऊपर उठाकर सार्वभौम नैतिक मानक के रूप में प्रस्तुत करता है। अनैतिक विचारों के प्रतिकार हेतु वह 'प्रतिपक्षभावना'⁴⁶ तथा मैत्री, करुणा, मुदिता और उपेक्षा की भावना का उपाय बताता है,⁴⁷ जिससे सदाचार बाह्य अनुशासन से आगे बढ़कर अन्तःकरण का रूपान्तरण बन जाता है।

10. सदाचार के प्रमुख तत्त्व

उपर्युक्त सभी परम्पराओं में सदाचार के कुछ तत्त्व समान रूप से प्रतिष्ठित हैं।

⁴¹ तत्त्वार्थसूत्र, 7.1-2 – “हिंसानृतस्तेयाब्रह्मपरिग्रहेभ्यो विरतिर्व्रतम्।” “देशसर्वतोऽणुमहती।”

⁴² आचारांगसूत्र, 1.2.3 – “सर्वे पाणा पियाउया सुहसाया दुःखपडिकूला”; द्रष्टव्य : हर्मन याकोबी (अनु.), जैन सूत्राज्ञ, भाग 1, सेक्रेड बुक्स ऑफ द ईस्ट, खण्ड 22, क्लैरेण्डन प्रेस, ऑक्सफोर्ड, 1884।

⁴³ पतंजलि, योगसूत्र, 2.30 – “अहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमाः”; द्रष्टव्य : पातञ्जलयोगदर्शन (व्यासभाष्य सहित), गीताप्रेस, गोरखपुर।

⁴⁴ योगसूत्र, 2.32।

⁴⁵ योगसूत्र, 2.31 – “जातिदेशकालसमयानवच्छिन्नाः सार्वभौमा महाव्रतम्।”

⁴⁶ योगसूत्र, 2.33 – “वितर्कबाधने प्रतिपक्षभावनम्।”

⁴⁷ योगसूत्र, 1.33 – “मैत्रीकरुणामुदितोपेक्षाणां सुखदुःखपुण्यापुण्यविषयाणां भावनातश्चित्तप्रसादनम्।”

10.1 सत्य

सत्य सदाचार का मूल तत्त्व है—विचार, वाणी और कर्म की एकरूपता। योगसूत्र के अनुसार सत्य में प्रतिष्ठित व्यक्ति की क्रिया फलवती होती है,⁴⁸ और मुण्डकोपनिषद् घोषित करता है—“सत्यमेव जयते नानृतम्”।⁴⁹

10.2 आत्मसंयम

इन्द्रियों और इच्छाओं का विवेकपूर्ण नियमन सदाचार की पूर्वशर्त है। कठोपनिषद् के रथ-रूपक में आत्मा रथी, शरीर रथ, बुद्धि सारथि और मन लगाम है; जिसकी इन्द्रियाँ विवेक के अधीन हैं, वही गन्तव्य तक पहुँचता है।⁵⁰ मनु के धर्म-लक्षणों में दम और इन्द्रियनिग्रह तथा बृहदारण्यक का ‘दाम्यत’ इसी तत्त्व के रूप हैं।

10.3 अहिंसा

अहिंसा मनु के सामासिक धर्म, योग के प्रथम यम, बौद्ध पंचशील के प्रथम शिक्षापद और जैन व्रतों के केन्द्र में है। योगसूत्र के अनुसार अहिंसा में प्रतिष्ठित व्यक्ति की सन्निधि में वैर का त्याग हो जाता है।⁵¹

10.4 करुणा

गीता आदर्श पुरुष को सब प्राणियों के प्रति द्वेषरहित, मैत्रीयुक्त और करुणाशील बताती है,⁵² और योगसूत्र दुःखी के प्रति करुणा-भावना को चित्त-प्रसाद का साधन मानता है।

⁴⁸योगसूत्र, 2.36 – “सत्यप्रतिष्ठायां क्रियाफलाश्रयत्वम्।”

⁴⁹मुण्डकोपनिषद्, 3.1.6।

⁵⁰कठोपनिषद्, 1.3.3-6 – “आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेव तु। बुद्धिं तु सारथिं विद्धि मनः प्रग्रहमेव च॥”

⁵¹योगसूत्र, 2.35 – “अहिंसाप्रतिष्ठायां तत्सन्निधौ वैरत्यागः।”

⁵²श्रीमद्भगवद्गीता, 12.13 – “अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः करुण एव च।”

10.5 परोपकार

गीता का 'सर्वभूतहिते रताः'⁵³ और बौद्ध परम्परा का 'बहुजनहिताय बहुजनसुखाय'⁵⁴ सदाचार को लोकहित से जोड़ते हैं; बृहदारण्यक का 'दत्त' इसी का वैदिक रूप है।

10.6 क्षमा

क्षमा मनु के दस धर्म-लक्षणों में तथा गीता की दैवी सम्पद् में परिगणित है,⁵⁵ और धम्मपद का यह कथन कि वैर से वैर शान्त नहीं होता, अवैर से होता है, इसी का बौद्ध रूप है।⁵⁶

10.7 अपरिग्रह

ईशावास्य का 'मा गृधः', योग का पंचम यम और जैन व्रत-तीनों अपरिग्रह पर एकमत हैं। योगसूत्र अपरिग्रह की स्थिरता को आत्मबोध से जोड़ता है।⁵⁷

11. आधुनिक भारतीय चिन्तन में सदाचार

लोकमान्य तिलक ने गीतारहस्य में सिद्ध पुरुष के लोकसंग्रहार्थ आचरण को सदाचार का आदर्श माना।⁵⁸ स्वामी विवेकानन्द ने कर्मयोग में निःस्वार्थता को नैतिक आचरण की मूल कसौटी बताया।⁵⁹ महात्मा गांधी ने यरवदा जेल से आश्रमवासियों को लिखे पत्रों में एकादश व्रतों—अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, असंग्रह, शरीरश्रम, अस्वाद, सर्वत्र भयवर्जन, सर्वधर्म-समभाव, स्वदेशी और स्पर्श-भावना—

⁵³ श्रीमद्भगवद्गीता, 5.25 एवं 12.4।

⁵⁴ विनयपिटक, महावग्ग, 1.11.1 – “चरथ भिक्खवे चारिकं बहुजनहिताय बहुजनसुखाय लोकानुकम्पाय।”

⁵⁵ मनुस्मृति, 6.92; श्रीमद्भगवद्गीता, 16.3।

⁵⁶ धम्मपद, गाथा 5 – “न हि वेरेन वेरानि सम्मन्तीध कुदाचनं। अवेरेन च सम्मन्ति एस धम्मो सनन्तनो॥”

⁵⁷ योगसूत्र, 2.39 – “अपरिग्रहस्थैर्ये जन्मकथन्तासम्बोधः।”

⁵⁸ बाल गंगाधर तिलक, श्रीमद्भगवद्गीतारहस्य अथवा कर्मयोगशास्त्र, हिन्दी अनु. माधवराव सप्रे, तिलक बन्धु, पुणे, प्रकरण 12 (“सिद्धावस्था और व्यवहार”)।

⁵⁹ स्वामी विवेकानन्द, कर्मयोग, द कम्प्लीट वर्क्स ऑफ़ स्वामी विवेकानन्द, खण्ड 1, अद्वैत आश्रम, कोलकाता।

की व्याख्या की।⁶⁰ इनमें योगदर्शन के पंच यम आधार हैं, जिन्हें गांधी ने जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में लागू करने योग्य व्रत का रूप दिया।

12. समीक्षात्मक मूल्यांकन

(क) आधार, अभिव्यक्ति और लक्ष्य : भारतीय सदाचार का आधार ऋत और धर्म है, अभिव्यक्ति शिष्टों के आचरण और लोकसंग्रह में है, और लक्ष्य चित्तशुद्धि है।

(ख) प्रामाण्य की व्यवस्था : मनु के चतुर्विध धर्मलक्षण में वेद, स्मृति, सदाचार और आत्मतुष्टि का क्रम एक सुव्यवस्थित नैतिक ज्ञानमीमांसा है, जिसमें बाह्य प्रमाण और आन्तरिक विवेक दोनों को स्थान है; मीमांसा की अविरोध-कसौटी इसे अन्ध-अनुकरण से बचाती है।

(ग) सार्वभौम केन्द्र : मनु का सामासिक धर्म, योग के सार्वभौम महाव्रत, बौद्ध पंचशील और जैन अणुव्रत—सभी अहिंसा, सत्य, अस्तेय और संयम पर एकमत हैं। यह अभिसरण वैदिक और श्रमण धाराओं के एक साझा सदाचार-केन्द्र का साक्ष्य है।

(घ) विधि और सद्गुण का समन्वय : 'सत्यं वद, धर्मं चर' जैसे विधि-वाक्य और 'दैवी सम्पद्' जैसे गुण-वर्णन साथ-साथ चलते हैं; 'सतां आचारः' और 'सन् आचारः' का द्विविध अर्थ इसी समन्वय का भाषिक रूप है।

(ङ) आन्तरिक कसौटियाँ : परम्परा ने स्वयं सदाचार की कसौटियाँ निर्धारित कीं—श्रुति-अविरोध (मीमांसा), शिष्ट के गुण (तैत्तिरीय), सुचरित का ही अनुकरण (तैत्तिरीय), तथा जाति-देश-काल से अनवच्छिन्नता (योगसूत्र)। इन कसौटियों के कारण सदाचार प्रथा का पर्याय न रहकर विवेक-सम्मत आचरण बनता है।

⁶⁰ मो. क. गांधी, मंगल प्रभात (अंग्रेज़ी : फ्रॉम यरवदा मन्दिर), नवजीवन प्रकाशन मन्दिर, अहमदाबाद।

13. निष्कर्ष

भारतीय परम्परा में सदाचार धर्म का जीवन्त और प्रत्यक्ष रूप है। वैदिक ऋत और व्रत में उसका बीज है; उपनिषदों में वह सत्य, संयम और श्रेय-विवेक के रूप में आन्तरिक बनता है; धर्मशास्त्रों में धर्म का प्रमाण बनता है; मीमांसा उसे तार्किक प्रामाण्य देती है; महाभारत और गीता शिष्ट के आचरण को लोक का प्रमाण मानते हैं; बौद्ध और जैन परम्पराएँ उसे शील और चारित्र के रूप में अहिंसा-केन्द्रित करती हैं; और योगदर्शन उसे सार्वभौम महाव्रत का रूप देता है, जो गांधी के एकादश व्रतों तक पहुँचता है।

समग्रतः भारतीय सदाचार को इस सूत्र में व्यक्त किया जा सकता है: सत्यनिष्ठ जीवन, आत्मसंयम, अहिंसा, करुणा और परहित-बोध से युक्त, विवेक-सम्मत आचरण। भारतीय दृष्टि में सदाचार ज्ञान का पूर्ववर्ती भी है और उसका फल भी—वह चित्तशुद्धि द्वारा ज्ञान का अधिकारी बनाता है और ज्ञानी के आचरण में पुनः अभिव्यक्त होता है। इसी अर्थ में वसिष्ठ का यह कथन भारतीय सदाचार-चिन्तन का सार है कि आचारहीन को वेद भी पवित्र नहीं करते।

सन्दर्भ-ग्रन्थ सूची

(क) मूल ग्रन्थ

ऋग्वेदसंहिता (सायणभाष्य सहित), वैदिक संशोधन मण्डल, पुणे, 1933-1951।

शतपथ ब्राह्मण, सं. अल्ब्रेख्त वेबर, बर्लिन, 1855 (पुनर्मुद्रण : चौखम्बा संस्कृत सीरीज़, वाराणसी)।

ईशादि नौ उपनिषद् (शांकरभाष्यार्थ सहित), गीताप्रेस, गोरखपुर।

बृहदारण्यकोपनिषद् (शांकरभाष्य हिन्दी-अनुवाद सहित), गीताप्रेस, गोरखपुर।

छान्दोग्योपनिषद् (शांकरभाष्य हिन्दी-अनुवाद सहित), गीताप्रेस, गोरखपुर।

श्रीमद्भगवद्गीता (शांकरभाष्य हिन्दी-अनुवाद सहित), गीताप्रेस, गोरखपुर।

महाभारत (हिन्दी अनुवाद सहित), खण्ड 1-6, गीताप्रेस, गोरखपुर।

मनुस्मृति (कुल्लूकभट्टकृत मन्वर्थमुक्तावली टीका सहित), चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी।

याज्ञवल्क्यस्मृति (विज्ञानेश्वरकृत मिताक्षरा सहित), चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी।

ओलिवेल, पैट्रिक (अनु. एवं सं.), द धर्मसूत्राजः : द लॉ कोड्स ऑफ आपस्तम्ब, गौतम, बौधायन एण्ड वसिष्ठ, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, ऑक्सफोर्ड, 1999।

ओलिवेल, पैट्रिक, मनूज कोड ऑफ लॉ : ए क्रिटिकल एडिशन एण्ड ट्रांसलेशन ऑफ द मानव-धर्मशास्त्र, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, न्यूयॉर्क, 2005।

जैमिनि, मीमांसादर्शनम् (शाबरभाष्य सहित), आनन्दाश्रम संस्कृत ग्रन्थावली, पुणे।

पतंजलि, पातञ्जलयोगदर्शन (व्यासभाष्य हिन्दी-अनुवाद सहित), गीताप्रेस, गोरखपुर।

बोधि, भिक्षु (अनु.), द कनेक्टेड डिस्कोर्सेज़ ऑफ द बुद्ध (संयुक्त निकाय), विज़डम पब्लिकेशंस, बोस्टन, 2000।

नॉर्मन, के. आर. (अनु.), द वर्ड ऑफ द डॉक्ट्रिन (धम्मपद), पालि टेक्स्ट सोसायटी, ऑक्सफोर्ड, 1997।

विनयपिटक, सं. हर्मन ओल्डेनबर्ग, द विनय पिटकम्, खण्ड 1 (महावग्ग), विलियम्स एण्ड नॉरगेट, लन्दन, 1879।

बुद्धघोष, द पाथ ऑफ प्यूरिफिकेशन (विसुद्धिमग्ग), अनु. भिक्षु जाणमोलि, बुद्धिस्ट पब्लिकेशन सोसायटी, कैण्डी।

आचारांगसूत्र, अनु. हर्मन याकोबी, जैन सूत्राज, भाग 1, सेक्रेड बुक्स ऑफ द ईस्ट, खण्ड 22, क्लैरेण्डन प्रेस, ऑक्सफोर्ड, 1884।

उमास्वाति, तत्त्वार्थसूत्र, विवेचक : पं. सुखलाल संघवी, पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध संस्थान, वाराणसी।

(ख) आधुनिक ग्रन्थ

काणे, पी. वी., हिस्ट्री ऑफ धर्मशास्त्र, खण्ड 1-5, भण्डारकर ओरियण्टल रिसर्च इंस्टीट्यूट, पूना, 1930-1962।

गांधी, मो. क., मंगल प्रभात / फ्रॉम यरवदा मन्दिर, नवजीवन प्रकाशन मन्दिर, अहमदाबाद।

तिलक, बाल गंगाधर, श्रीमद्भगवद्गीतारहस्य अथवा कर्मयोगशास्त्र, हिन्दी अनु. माधवराव सप्रे, तिलक बन्धु, पुणे।

विवेकानन्द, स्वामी, द कम्प्लीट वर्क्स ऑफ स्वामी विवेकानन्द, खण्ड 1, अद्वैत आश्रम, कोलकाता।

हार्वे, पीटर, एन इंट्रोडक्शन टु बुद्धिस्ट एथिक्स, कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, कैम्ब्रिज, 2000।